बारहवीं गाथा, इसका भावार्थ, यहाँ तक आया है।

जहाँ तक यथार्थ ज्ञान श्रद्धा की प्राप्तिरूप, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हुई हो तब तक यह होता है। क्या ? वहाँ तक कि जिसमें से यथार्थ उपदेश मिले... आहाहा ! यह भी शर्त यह... जिससे यथार्थ उपदेश मिले। इतनी तो इसे पहचान पहले करना पड़े न ?

सम्यग्दर्शन होने के पूर्व - ऐसा होता है, फिर भी इससे सम्यग्दर्शन हो - ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन होने के पूर्व, उसे जिससे यथार्थ उपदेश मिले, जिससे यथार्थ उपदेश मिले, ***अर्थात जैसे जो यथार्थ उपदेश देनेवाला कौन है - ऐसा तो इसे पहले ज्ञान होना चाहिए, भले अज्ञान है वहाँ, परंतु उसे इस जाति का ज्ञान तो होना चाहिए न कि यथार्थ उपदेश करनेवाला कौन है ?***

ऐसे जिनवचनों का सुनना, जिसमें से यथार्थ गुण... ऐसे जिनवचन, अर्थात कि इस वीतरागभाव को स्थापित करते हो ऐसे जिनवचनों को सुनना। जो उपदेशक यथार्थ उपदेश में वीतरागभाव की स्थापना करता हो, उसे जिनवचन कहते, और उनसे जिनवचन सुनना।

धारण करना, सुनकर याद रखना, क्या कहते हैं ? वीतरागभाव प्राप्त कैसे हो ? - ऐसा क्या कहते हैं उसे याद रखना। एवं जिनवचनों के कहनेवाले श्रीगुरु की भक्ति, वह ज्ञान श्रद्धा की प्राप्ति जिससे हो, यह जिनवचन को कहने वाले श्री गुरु की भक्ति, वीतरागगुरु की भक्ति... आहाहा ! जिनबिम्ब का दर्शन। सभी (जगह) जिन-

जिन शब्द प्रयोग किया है। वीतरागी... उसमें - ऐसा आया न जिनवचनों को सुनना यह यथार्थ उपदेश मिले और जिनवचनों को कहनेवाले जिनगुरु की भक्ति एवं जिनबिम्ब का दर्शन वीतरागी बिम्ब, प्रतिमा। आहाहा ! जिनके ऊपर श्रृंगार कि वस्त्र न...हो, जैसा जिनस्वरूप था भगवान का - ऐसा जिनबिम्ब यहाँ हो, इसके दर्शन, इत्यादि व्यवहारमार्ग में... यह कहीं समकित है नहीं, परंतु फिर भी - ऐसा भाव उसे होता, उसरूप प्रवर्तना - ऐसा कहा जाता है।

प्रयोजनवान है। इतना तो इसे आये ही। और जिसे श्रद्धा ज्ञान तो हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ परंतु साक्षात् प्राप्ति नहीं हुई, पूर्ण वीतरागी दशा प्राप्त हुई नहीं, सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ परंतु पूर्ण यथाख्यात चारित्र केवलज्ञान हुआ नहीं। उन्हें पूर्वकथित कार्य पूर्वकथित अर्थात यह, जिनभगवान के यथार्थ वचन सुनना, धारण करना, जिनगुरु की भक्ति, जिनबिम्ब के दर्शन उसे यह पूर्वकथित कार्य होते हैं। समझ में कुछ आया ?

सम्यग्दर्शनज्ञान होने के बाद भी, पूर्ण वीतराग नहीं अतः - ऐसा व्यवहार होता है।

परद्रव्य का अवलम्बन छोड़नेरूप अणुव्रत महाव्रत का ग्रहण भी होता है। जितने प्रमाण में यह परद्रव्य का अवलम्बन छोड़ें इतने प्रमाण में उसे अणुव्रत और महाव्रत होते हैं। उनका ग्रहण, समिति, गुप्ति, पाँचप्रकार की समिति, तीन गुप्ति, पंचपरमेष्ठी के ध्यानरूप प्रवर्तन... पंचपरमेष्ठी के ध्यानरूप प्रवर्तन... व्यवहार है न यह ! और यह शुभ विकल्प है।

इसरूप प्रवर्तन करनेवाले की संगति करना... आहाहा ! और विशेष जानने के लिए शास्त्रों का अभ्यास करना। सम्यग्दर्शनज्ञान होने के बाद भी... पूर्णता न हो उसे इस जाति का अभ्यास शास्त्रों का (पठन) उसे होता है। यह शुभभाव है न ? आहाहा ! इत्यादि व्यवहार मार्ग में स्वयं प्रवर्तना... है न ? और दूसरों को प्रवर्ताना अर्थात इसप्रकार उसे उपदेश देते हैं।

- ऐसा व्यवहारनय का उपदेश अंगीकार करना प्रयोजनवान है। नीचे स्पष्टीकरण (है) व्यवहारनय के उपदेश से - ऐसा न समझना कि आत्मा परद्रव्य की क्रिया कर सकता है; परंतु - ऐसा समझना कि व्यवहार उपदिष्ट शुभभाव को आत्मा व्यवहार से कर सकता है। आहाहा ! - ऐसा इसका अर्थ है। व्यवहार से उसे शुभभाव, अशुभ से बचने को होता है। पुनः उस उपदेश से - ऐसा भी न समझना कि आत्मा शुभभाव करने से शुद्धता को पाता है। जिनबिम्ब का दर्शन करने से निश्चय की प्राप्ति हो - ऐसा नहीं। आहाहा !

परंतु - ऐसा समझना कि साधकदशा की भूमिकानुसार शुभभाव आये बिना रहते नहीं, बस इतनी बात है।

वास्तव में बात ऐसी सूक्ष्म है कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ। आहाहाहा ! उसका ज्ञान ही। जिस प्रकार का राग आनेवाला है उसी प्रकार का ज्ञान स्वपरप्रकाशक उस समय होता ही (है) ज्ञान ही - ऐसा स्व को और जो रागादि जितने अंश में आये उसे जानने की योग्यतावाला ही ज्ञान प्रगट होता (है)। समझ में आया ? जितने प्रकार का... राग जो आता एवं सम्यग्दर्शन है, अर्थात दृष्टि तो ध्रुव ऊपर है और ज्ञान भी स्व को जानता है और उस समय उस उस प्रकार का राग जो आनेवाला होता है, उसे जानता हुआ ही ज्ञान प्रगट होता है। ऐसी बात है भाई ! आहाहा !

इस व्यवहारनय को कथंचित असत्यार्थ कहने में आया है, परंतु जो कोई उसे सर्वथा असत्यार्थ जानकर... झूठा जान कर छोड़ दे तब शुभोपयोगरूप व्यवहार छोड़े शुभ को छोड़े और शुद्ध तो आया नहीं - आहाहा ! शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति तो हुई नहीं, जो शुद्धोपयोगी वीतरागता होना चाहिए, वह तो है नहीं और शुभोपयोग छोड़े, तब तो अशुभ में जाये। आहाहा !

इसलिये उल्टा अशुभोपयोग में ही यह आकर भ्रष्ट होकर चाहे जैसी स्वेच्छारूप प्रवर्ते, तब नरकादिगति तथा परंपरा निगोद को प्राप्त होगा, आहाहा ! दृष्टि हुई नहीं ज्ञान की खबर नहीं और इस शुभ को छोड़कर बैठे, तब तो अशुभ में जाये। आहाहा ! जो शुद्ध की प्राप्ति हुई हो तब तो शुभ छूट जाता है। आहाहा ! नरकादिगति तथा परंपरा निगोद को प्राप्त होगा। आहाहाहा ! आज तो सुबह में - ऐसा विचार आया था, पहले सुबह उठकर यह पढ़ते थे तब, कि अहो। एक श्वास में निगोद के अठारह भव होते है। आहाहा ! ऊपर नीचे करे ऐसी श्वास में मनुष्य का श्वास लेना हाँ। अठारहभव हुए। आहाहाहा ! उसे कितना दुःख होगा ? आहाहा ! देव के भव में एक सागर की आयु होती है, उसे पन्द्रहदिन में अेक श्वासोच्छवास आती है, यह क्या कहते हैं यह ? संसार की स्थिति भी ऐसी कुछ है। आहाहा ! स्वर्ग के देव एक सागर की स्थितिवाले हों, उसे पन्द्रहदिवस में एक श्वाच्छोश्वास (होती) आहाहा ! यह ले सकता कि छोड़ सकता है, यह प्रश्न यहाँ है नहीं। समझ में आया ? और नारकी को तो श्वास का रोग ही पहले से होता है। जन्मे तभी से श्वास (दमा) चलें। आहाहाहा !

इसलिये कितने यह कहते है कि अपन श्वास, धीरे-धीरे लें तब थोड़े श्वास ले सकेंगे तब आयु बढ़ेगी, बहुत होते है न। (श्रोता :- मान्यता होती न - ऐसा माननेवाले

होते न) हैं हमको तो बहुत (मिलते) एक थे त्रिभुवन विट्ठल सेठ, बूढा पूरा लम्बा, उसे कोई रोग नहीं और यह - ऐसा क्यों चलता है ? थे वृद्ध धीरे-धीरे इसप्रकार (चलें) रोग नहीं। निरोगी। वह कहते कि कितने लोग - ऐसा कहते हैं कि श्वास कम लें तो आयु बड़ी हों, और श्वास बहुत ज्याद लें तो आयु घट जाये - ऐसा नहीं, श्वास के आधार से आयु नहीं। आयु की स्थिति तो जो है सो है। आहाहा !

निगोद का जीव एक श्वास में अठारहभव, भाई ! क्या है बापू ! यह बात। नारकी जीव को जन्म से श्वास की हांफी चलती है, देव के जीव को पखवाड़े में एक श्वास आवे। आहाहा ! यह तो संसार की स्थिति में - ऐसा स्वरूप है श्वाच्छोश्वास का। आहा !

और यहाँ एक देखो तो, एक श्वाच्छोश्वास में, स्वरूप का भान करके भव का अंत लाये। आहाहा ! ***अंतर वस्तु शुद्ध चैतन्यघन है, उसमें अंदर जानेपर, एक ही समय लगता है। यह तो आता है न `रभसा' एक समय लगता परंतु उपयोग असंख्य समय का है और अर्थात असंख्य समय (में) इसके ख्याल में आता (है)। आनंद के अनुभव का आहाहा*** ! यह यें नारकी को आती श्वास, देवों को भी दशहजार की स्थितिवालों को श्वास कैसा होगा ? और जिसे एक सागरमें पन्द्रह (दिन) पखवाड़ा में श्वास आये ! सर्वार्थसिद्धि के तेत्तीस सागरवाले सोलह पखवाड़ा, साड़े सोलह पखवाड़ा उन्हें श्वास आती है। आहाहा ! क्या है यह तो संसार ! वह साड़े सोलह पखवाड़िया कितना होता, साड़े सातमाह हुये न ? (श्रोता :- सवा आठ महीना) साड़े आठ महीना हुए। साड़े आठ महीने- ऐसा श्वास एक बार आये। आहाहा !

यह देव में दशहजार की आयुवालों को कितनी होगी ? जिसने सागर में पन्द्रह पखवाड़िया उसके पल्य तो दश कोड़ाकोड़ी पल्य है, उनका श्वास कितना होगा। आहा ! और दशहजार की आयुवाले देव का श्वास कैसा होगा, और नारकी को तेत्तीस सागर की स्थितिवाले को ! आहाहाहाहा ! यह श्वास में दमा। आहाहा !

ऐसी स्थिति में भी अंतर्मूख होकर सम्यग्दर्शन करते हैं। भगवान बिराजते हैं न प्रभु अंदर भाई। पूर्ण परमात्म स्वरूप तुम्हारी पर्याय के नजदीक है न ! आहाहा ! कहीं दूर नहीं। आहाहाहा ! उस पर्याय को अंतर में झुकादो... ऐसी श्वास में। आहाहा ! यह तो यह संसार की गतियों की स्थिति है। यह श्वास में इस प्रकार ले सकूं कि इसप्रकार छोड़ सकूं - ऐसा है ही नहीं। यह तो जड़ की परमाणु की क्रिया है। आहाहा ! परंतु इसमें - ऐसा तुमने किया। आहाहा ! स्वयं अपने स्वरूप का... भवभाय से डरकर... माथे भयभव अनन्त अनन्त भव किए - ऐसे अनंतभव, भवों से डर करके, भव भय से डर चित्त... वह अंतर्मुख होता है। आहाहाहा ! दुःख से

नहीं, भवभय से, भव मात्र दुःख है। चाहे स्वर्ग का भव यह ठीक और नारकी का बुरा- ऐसा भी नहीं। आहाहाहा !

भव मात्र के, भव के भय के डर से... अरेरे ! कहाँ अनंतभव और कहाँ हम भव के भाव बिना का हमारा स्वरूप। आहाहाहा ! भव बिना का तो सही परंतु भव के भाव बिना का हमारा स्वरूप। आहाहाहा ! - ऐसा चिद्घन भगवान ! इसको पीछे लौटाकर अंदर में जाये, आहाहाहाहा ! अंतर्मुहूर्त के अंदर उपयोग की उपयोग की अपेक्षा से, बाकी तो समयांतर में दर्शन होने पर, ज्ञान समयांतर में सम्यक् हो जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह शास्त्रज्ञान की वहाँ जरुरत नहीं। आहाहा ! यह भगवान आत्मा। पूर्ण शुद्धस्वरूप... गहन-गहन जिसका स्वभाव और गहन जिसकी शक्तियाँ। आहाहा ! यह गहन जिसका भवभ्रमण के भाव और भव। आहाहा ! उसमें से हटकर... भगवान महाप्रभु। परमात्मद्रव्यवस्तु... उसकी दृष्टि करते हैं, तब ज्ञान सम्यक् होता है और तब उसे अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। आहाहाहा !

यह देव तेत्तीस सागर (आयुवाले) तेतीस पखवाड़िया में श्वास ले और तेतीस हजार वर्ष के बाद कंठमें से अमृत झरता, यह जड़ का अमृत है। समझ में आया ? एक सागर की स्थितिवाला देव, उसे हजार वर्ष में कंठमें से अमृत झरता है। उन्हें दाल-भात-रोटी बनाना नहीं पड़े, न चूल्हा जलाना - ऐसा नहीं कुछ। आहाहाहा ! यह पुण्य के फल की अपेक्षा संसार की स्थिति तो देखो ! आहाहा ! जिसमें धर्म तो है ही नहीं। आहाहा ! पुण्य के फल में मिला देव (भव) उन्हें हजार वर्ष (बाद) कंठमें से अमृतझरता है, यह जड़ अमृत है। यह तो प्रभु (ज्ञायक) को पकड़ने पर एकक्षण में अमृत, आनंद अमृत झरे। आहाहाहा ! समझ में आया कुछ ?

उनको एक हजार वर्ष में... सागरों की आयुवालों को, कमवालों को, यह तो कहते हैं कि यह प्रभु तुम कौन हो, यदि शुद्धोपयोग की प्राप्ति करो, इस शुद्धोपयोग में आत्मा जानने में आयेगा, और शुद्धोपयोग पूरा होगा, फिर उसे शुभभाव आयेगा नहीं। शुद्धोपयोग से आत्मा को पकड़नेपर, आहाहा ! तुम्हें अमृत झरेगा। उन देवों को अमृत झरता है, यह तो धूल का अमृत (है), पुद्गल का, यह (आत्मा) तो अमृत का नाथ। आहाहाहा !

अरे रे ! इसके लिये समय कहाँ निकालता है यह ? पर के लिये करने में, जगत जंजाल में जीवन बिताया। आहाहा ! अपना एकक्षण मनुष्य (भव) का कौस्तुकमणि (रत्न विशेष) अपेक्षा भी, आहा...हा ! महा कीमती, यह किसके लिए ? धरम के लिए। आहाहा !

एकक्षण में अंदर जाने पर तुम्हें अमृत आयेगा प्रभु ! सागरों की आयुवाले देव को तो पन्द्रहदिन में अमृत आये... हजार वर्ष (बाद) आये, पन्द्रहदिन में एक बार तो श्वास लें, निगोद के जीव प्रभु एक श्वास में अठारह भव करें, उनके एकभव में उनके श्वास की स्थिति कितनी, होगी ? क्या कहा यह ? एक श्वास में जो अठारह भव, तो एक भव में इस श्वास का हिस्सा कितना इसे आता होगा ? आहाहा ! ऐसे भव प्रभु तुमने अनंत किये।

अब यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि होकर बाद में जो व्यवहार आये, आहाहा ! उसका भी जाननेवाला रहना। आहाहाहाहा ! करनेवाला यह कहते हैं यह व्यवहारनय का कथन है। भगवानआत्मा ! भूतार्थ परमात्मा। अनंत... अनंत... अमृत के स्वभाव से लबालब प्रभु भरा है। एकगुण ऐसे तो अनंतगुण उसे तुम ज्ञान में और दृष्टि में लो, तब इससे तुम्हें अमृत आयेगा और उसके बाद तुम्हें शुभभाव आयेगा, फिर भी वह तुम्हारा, ज्ञान तुम्हें और उसे जानती हुई पर्याय प्रगट होगी। आहाहा ! - ऐसा मार्ग ! आहाहा !

सम्यग्दर्शन होने के बाद... वस्तु को जाना देखा अनुभव किया, ओहोहो ! यह तो अमृत का सागर, जिसके अंशरूप नमूनेमें से पूरा आत्मा; यह तो अमृत का सागर प्रभु ! अरे मैं कहाँ गया था ? इसे छोड़ कर मैं कहाँ रहा था ? अब-राग को छोड़कर यहाँ जाता हूँ अब। आहाहाहा ! ऐसी जो दृष्टि हुई अनुभव हुआ, यह तो निश्चय के लक्ष्य से हुआ अतः निश्चय हुआ। परंतु इसे जबतक पर्याय में, शुद्धोपयोग की प्राप्ति न हो, एकधारा (लगातार) शुद्धोपयोग की प्राप्ति न हो, ***शुद्धोपयोग में समकिती हुआ, ज्ञान हुआ परंतु यह शुद्धोपयोग लम्बे समय रहता नहीं। समझे कुछ ? उसे शुभभाव आये, अशुभ भी आये। आहाहाहा ! परंतु यह शुभमें से आगे जाकर अकेला शुद्धोपयोग न हो तब तक - ऐसा शुभभाव आये, उसे ज्ञान की पर्याय उस समय की स्व को और उसको जानने की योग्यतावाली ही पर्याय प्रगट होती है। उसे कुछ नया दूसरा जानना है - ऐसा है नहीं।*** आहाहा !

क्या कहा यह ? यह जो ज्ञान स्वभाव का हुआ, इसमें जो ज्ञान की पर्याय हुई। इस समय जब शुद्धोपयोग अंदर में है, बाहर में तो है नहीं, भले अबुद्धिपूर्वक अंदर राग है, फिर भी राग तरफ का उपयोग नहीं, परंतु फिर भी उसके ज्ञान की पर्याय उस समय भी स्व को जानती है और यह राग है उसे अव्यक्ततारूप भी अंदर जानने की पर्याय होती है। अब बाहर निकला और जब शुभभाव आया तब भी उस समय उसे जानती हुई पर्याय स्व और पर को जानती उस समय उस उस योग्यतावाली। आहाहा ! जितनी पर्याय शुद्ध हुई और जितनी पर्याय अशुद्ध

रही उसे जानता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। इसे जाना हुआ प्रयोजनवान कहा जाता है। - ऐसा है प्रभु ! ओहो ! शुद्धोपयोग हुआ न हो, दृष्टि जिसे सम्यक् है यह तो - ऐसा करे नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! परंतु जिसे दृष्टि हुई नहीं और माना है कि मुझे सम्यक्त्व हो गया और वह यह शुभोपयोग छोड़ दे तब तो अशुभ में जाये। आहाहा !

सम्यग्दृष्टि जिसे ध्रुव का... ज्ञान हुआ है, वह तो शुभ में आये उसे जाने, यह शुभ छोड़कर अशुभ में नहीं जाता। आहाहा ! यह शुभ छोड़कर तो शुद्ध में जाता है। परंतु जिसने माना है कि हम समकिती है और श्रद्धा है और वह शुभभाव को छोड़े तब तो अशुभ में आ करके स्वच्छंदी हो। आहाहाहा !

तब नरकादि गति एवं परम्परा निगोद- ऐसा क्यों कहा कि ***मूलतत्त्व की विराधना यह निगोद का कारण है, आहाहा ! तत्त्व की आराधना यह मुक्ति का कारण है, तत्त्व की विराधना यह निगोद का कारण है। और बीच में जो तिर्यंच और मनुष्यादि भव होते, नरकादि यह शुभाशुभ भाव का फल है।*** समझे कुछ ? आहाहा ! मार्ग अलौकिक है बापू ! (आहा !)

संसार में ही भ्रमण करें... अतः शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्धात्मा उसकी प्राप्ति जहाँतक पूर्ण न हो - ऐसा। शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्धात्मा / अर्थात द्रव्य नहीं पर्याय में, परंतु यहाँ, शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्धात्मा, उसकी प्राप्ति जहाँतक न हो पर्याय में, आहाहाहा ! शुद्धनय का विषय तो आत्मा, परंतु उसकी पर्याय में प्राप्ति जब तक पूर्ण न हो तब तक ***व्यवहार भी जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह प्रयोजनवान है अर्थात - ऐसा - ऐसा ज्ञान ही उसे जानता हुआ प्रगट होता (है) ऐसी बात है भाई।***

इस बात की चर्चा हो गई थी एक व्यक्ति कोई ब्रह्मचारी था और उसके साथ... वह कहें कि ***यह तो ज्ञान ही - ऐसा प्रगटता है। जाना हुआ प्रयोजनवान अर्थात उपयोग लगाकर नया जानना - ऐसा वहाँ नहीं। आहाहा ! भगवानआत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु इसका जब ज्ञान हुआ पर्याय में, तब इस पर्याय में ज्ञान स्वका भी आया और इस समय राग का अंश भी शेष है उसका भी ज्ञान वहाँ परप्रकाशक उसके साथ प्रगटा है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है।***

जैसे अज्ञानी के ज्ञान में भी स्वद्रव्य ही प्रकाशित होता है। इसीप्रकार ज्ञानी के ज्ञान में व्यवहार प्रकाशता ही है, स्व तो प्रकाशित होती ही है, इसके अतिरिक्त। (पर भी) आहाहा ! समझे कुछ ?

ओहो ! - ऐसा मार्ग। अरे ! सुनने न मिले यह मनुष्यपना चला जाता है।

आहाहा ! इसका एक-एक पल...। आहाहाहाहा !

जब तक प्राप्ति न हो, तब तक व्यवहार जानना... - ऐसा स्वरूप इसका है। व्यवहार को जाने - ऐसा ही इसका स्वरूप है। अर्थात (इसका अर्थ) व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! समझे कुछ ?

ऐसे स्यादवाद मत में श्रीगुरुओं का उपदेश है। कुन्दकुन्दाचार्य आदि संतों ! दिगंबर मुनियों जो आत्मज्ञानी अनुभवी चारित्र में, ऐसे श्री गुरुओं का यह उपदेश है। कि जबतक आत्मा के शुद्धनय का विषय द्रव्य है परंतु उसकी पर्याय में प्राप्ति जबतक शुद्ध की न हो तब तक उसे नीचे अवस्था में व्यवहार आता है, और व्यवहार आये वह जानने योग्य है - ऐसा जाने, आदर करने योग्य है - ऐसा है नहीं। आहाहाहा !

- ऐसा अपेक्षा से कहा है, व्यवहार को असत्यार्थ कहा यह इस अपेक्षा से कहा है, मुख्य को निश्चय कहकर उसकी दृष्टि कराने के लिए... असत्यार्थ कहा, सत्य इसे कहा न उसे असत्यार्थ कहा। असत्यार्थ मानकर शुभ छोड़ दे और शुद्धोपयोग की प्राप्ति हुई नहीं तब भ्रष्ट हो जायेगा। आहाहा ! वस्तु की मर्यादा की स्थिति ऐसी है। यह कहीं भगवान कहते है, अतः - ऐसा है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! वस्तु के स्वरूप की स्थिति इसजाति की है। आहाहा ! कि पूर्ण स्वरूप को जाने, तब इसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, उसी समय उसे उस पर्याय में रागादिक शेष है उसका भी ज्ञान साथ में होता ही है। समझे कुछ ? उसे यह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान कहा, शेष तो तीन सौ बीस और उन्नीस गाथा में तो - ऐसा लिया है, कि धर्मी जीव को आत्मज्ञान हुआ और ज्ञायकभाव है यह आया, वह तो इस उदय को भी जाने जाने, इस व्यवहार को जाने, निर्जरा को जाने, आहाहाहा ! बंध को भी जाने मोक्ष को भी जाने। यह तो जाननेवाला **चैतन्यमूर्ति** ज्ञायक रस है। यह तो दोनों को जाने... जाने... जाने...।

यह निर्जरा करे और उदय करे और आहाहाहा ! - ऐसा कहाँ है ? जाननेवाला भगवान ज्ञायक में - ऐसा कहाँ है ? यह तो बंध को जाने, मोक्ष को जाने। यह बंध को करे और मोक्ष को करे - ऐसा भी नहीं। आहाहाहा ! वस्तु है यह स्वयं पर्याय को करे - बंध की और मोक्ष की पर्याय को करे - ऐसा नहीं। होता है, उसे स्वपर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय में... ज्ञायक तो ध्रुव है, परंतु उसका जो ज्ञान हुआ है स्वपरप्रकाशक उसमें, इसे जानता है। आहाहा ! - ऐसा ही वस्तु का वास्तविक स्वरूप है। - ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा !

लो बारहवीं गाथा पूरी हुई।

श्लोक - ४

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के।
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव।।४।।

इसी अर्थ का कलशरूप काव्य टीकाकार कहते हैं :-

श्लोकार्थ :- [उभय-नय-विरोध-ध्वंसिनि] निश्चय और व्यवहार-इन दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है; उस विरोध का नाश करनेवाला [स्यात्, पद-अंके] `स्यात्'-पद से चिह्नित जो [जिनवचसि] जिन भगवान का वचन (वाणी) है उसमें [ये रमन्ते] जो पुरुष रमते हैं (-प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं) [ते] वे [स्वयं] अपने आप ही (अन्य कारण के बिना) [वान्त मोहाः] मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके [उच्चैः परं ज्योतिः समयसारं] इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को [सपदि ईक्षन्ते एव] तत्काल ही देखते हैं। वह समयसाररूप शुद्धात्मा [अनवम्] नवीन उत्पन्न नहीं हुआ; किन्तु पहले कर्मों से आच्छादित था सो वह प्रगट व्यक्तिरूप हो गया है और वह [अनय-पक्ष-अक्षुण्णम्] सर्वथा एकांतरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता, निर्बाध है।

भावार्थ :- जिनवचन (जिनवाणी) स्याद्वादरूप हैं। जहाँ दो नयों के विषय का विरोध है, जैसे कि-जो सत्रूप होता है वह असत्रूप नहीं होता, जो एक होता है वह अनेक नहीं होता, जो नित्य होता है वह अनित्य नहीं होता, जो भेदरूप होता है वह अभेदरूप नहीं होता, जो शुद्ध होता है वह अशुद्ध नहीं होता इत्यादि नयों के विषयों में विरोध है - वहाँ जिनवचन कथंचित् विवक्षा से सत्-असत्रूप, एक-अनेकरूप, नित्य-अनित्यरूप, भेद-अभेदरूप, शुद्ध-अशुद्धरूप जिसप्रकार विद्यमान वस्तु है उसीप्रकार कहकर विरोध मिटा देता है, असत् कल्पना नहीं करता। जिनवचन

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों में, प्रयोजनवश शुद्धद्रव्यार्थिक नय को मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं और अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिकनय को गौण करके व्यवहार कहते हैं। - ऐसे जिनवचन में जो पुरुष रमण करते हैं वे इस शुद्ध आत्मा को यथार्थ प्राप्त कर लेते हैं; अन्य सर्वथा-एकांतवादी सांख्यादिक उसे प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वस्तु सर्वथा एकांत पक्ष का विषय नहीं है तथापि वे एक ही धर्म को ग्रहण करके वस्तु की असत्य कल्पना करते हैं - जो असत्यार्थ है, बाधासहित मिथ्यादृष्टि है।।४।।

श्लोक - ४ पर प्रवचन

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के।
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव।।४।।

इस अर्थ का कलशरूप काव्य टीकाकार अब कहते हैं। `उभयनय विरोधध्वंसिनि' निश्चय और व्यवहार दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है, क्या कहते हैं निश्चयनय है और व्यवहार है, यह तो दो हुये अतः दोनों के विषय में विरोध है। विरोध न हो तो दो (नाम) हो नहीं दोनों त्रिकाली को जानें या दोनों पर्याय को जानें अथवा दोनों उपादेय को मानें तब यह नयों के भेद दोनों हुए कहाँ से?

एकनय निश्चय स्व को त्रिकाल को उपादेय जानता है, और व्यवहारनय रागादिक को पर्यायादिक को हेय जानता है, जाने, परंतु हेयरूप में जाने। आहाहा ! क्योंकि दो नयों का विषय... (भिन्न-भिन्न) दो नय है, नय अर्थात ज्ञान का अंश और उसका विषय दो है भिन्न-भिन्न। निश्चयनय का विषय है त्रिकाली, व्यवहारनय का विषय है वर्तमान पर्याय और रागादिक। आहाहा ! अरे - ऐसा सीखना और - ऐसा, इसकी अपेक्षा इक्छामि प्रतिक्रमण इयरावियरा। जयसुखभाई ! `मिच्छामिदुःकड़ं' जाओ ! ठाणाउठाणं। एक स्थान... से दूसरे स्थान यह कुत्ता आता और फिर उठाते है न ! फिर ठांणं उठाणं नहीं आता ? यह संप्रदाय (स्थानकवासी में आता) एक स्थान पर जीव हो यहाँ से दूसरी जगह रखना... वैसे तो अपने में, कपड़े ऊपर चढ़ा हो तो हटाने के अलावा दूसरा उपाय न रहे। वह उसका स्थान छोड़कर ऐसे जाये। छोटाभाई ! इच्छामि पडिक्कमणुं। किया था कि नहीं ? किया था ? आता है कि नहीं इसमें? ठाणं उठाणां, जीवीयाउ वऊशवीया, श्वेताम्बर में आता है - पहला णमों अरहंताणं,

दूसरा तिख्खुतो, तीसरा इच्छामि चौथा तरस उतरी, पाँचमा लोगस्स, छठवां करेमि भंते और सातमा नमोत्थुणं। क्यों, सुजानमलजी ! किया था कि नहीं सात? हमने तो दस वर्ष की उम्र से किया था - ऐसा सब, पाठशाला में। जैनशाला में। आहा !

नयों के विषय के भेद से, दो नय का... आहाहा ! एक निश्चयनय, और एकव्यवहार दोनों का विषय भिन्न-भिन्न है, इसलिए दोनों के विषय में विरोध है। दो नय ही विरोधी विषयवालें हैं। निश्चय का विषय भगवान पूर्णानंद का नाथ अभेद त्रिकाल है, व्यवहारनय का विषय उसीका वर्तमान अंश और राग, यह व्यवहारनय का विषय है दो नय और उनका विषय, और उसमें विरोध है। क्या बात है यह ? बापू ! वस्तु का स्वरूप - ऐसा है भाई ! जो ज्ञान का अंश त्रिकाली को जाने उसे निश्चय कहें, जो ज्ञान का अंश वर्तमान पर्यायरूप अंश को और राग को जाने उसे व्यवहार कहते है। वस्तु दो है कि नहीं ? त्रिकाली भी है और पर्याय भी है और राग भी है। आहाहा !

मूलबात की कीमत घट गई और ऊपर के क्रियाकाण्डों में मर गया (फँस गया) घुसकर इसमें न इसमें हो गया लो... वस्तु क्या है और उसके भेद क्या... नय है न ! यह दो नय क्या है और उसका विषय क्या है और दोनों का विरोध क्या है ? आहाहा ! यह वस्तु है न भगवान आत्मा। पूर्ण शुद्धचैतन्यघन। अभेद एक स्वरूप। यह तो निश्चय का विषय है, और उसीका एक वर्तमान अंश, त्रिकाली नहीं अपितु वर्तमान अंश और रागादि-द्वेषादि, यह व्यवहारनय का विषय अर्थात व्यवहार उसे जानता है, निश्चय इसे जानता है। आहाहा !

परस्पर विरोध है, इस विरोध को नाश करनेवाला स्यात् पद अंक... स्यादपद से चिन्हित लक्षण है। अपेक्षा से कहना जिसका लक्षण है, त्रिकाली को जाने वह निश्चय है पर्याय को जाने वह व्यवहार है। - ऐसा कथंचित निश्चय और कथंचित व्यवहार दोनों का ज्ञान जिनवचन कराता है। 'जिनवचसि रमंते' जिन भगवान का वचन वाणी उसमें जो पुरुष रमते हैं। अब इसमें से लोगो - ऐसा निकालते है कि जिनवचन में रमते है अर्थात निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों में रमते है। - ऐसा कहा न? जिनवचन (दो में एक साथ रमण कर सकते नहीं) - ऐसा हो सकता ही नहीं, कलश टीकाकारने जिनवचसि रमे उसका अर्थ ही यह किया है कि जिनवचन में आत्मा त्रिकाली है वह उपादेय कहा है उसमें जो रमते हैं... जिनवचन तो जड़ है। उसमें रमण कैसा? जिनवचसि रमन्ते उसमें रमना वह क्या ? इसे दूसरी तरह से जिनवचन में दोनों कहे है, निश्चय और व्यवहार तो दोनों में रमना किस प्रकार, क्या ? आहाहा ! समझे कुछ ? अर्थात स्यात् कथंचित् त्रिकाली वस्तु है वह निश्चय है और वर्तमानपर्याय

का अंश वह व्यवहार है। - ऐसा कहकर त्रिकाली में रमना - ऐसा जिनवचन में कहा है। आहाहा !

इसमें से बहुत से - ऐसा निकालते हैं, परंतु कलश टीकाकार ने तो स्पष्ट कहा (है) जिनवचसि रमन्ते - कलश टीकाकार... इस गाथा के अर्थ में ही यह कहा है, जिन वचसि (कलश टीका है न राजमलजी की) रमन्ते अर्थात वीतराग ने जो पूर्ण शुद्धचैतन्य को उपादेय कहा, यह जिनवचन है। उसे वाणी में रमना नहीं, ***परंतु जिनवचन में कहा हुआ - ऐसा जो आत्मा, आहाहा ! उसमें रमना - ऐसा जिनवचसि रमन्ते का अर्थ है।*** अब इसके तीन अर्थ करते (हैं) एक तो कहते हैं, जिनवचन में रमना, तब वाणी में रमना यह तो वस्तु है नहीं, फिर दूसरा कहते हैं, जिनवचन में दो कहे हैं निश्चय और व्यवहार, दोनों में रमना, ***इस एक शब्दमें से तीन अर्थ निकलते हैं। क्या कहा ? कि जिनवचसि रमंते अर्थात वाणी में रमना। तब वाणी में रमना क्या ? वाणी तो जड़ है, भाषा तो ऐसी है।***

दूसरा - ऐसा कहते कि जिनवचन में तो दो नय कहे है दोनों में रमना - ऐसा नहीं परंतु दो नय कहे है इन दोनों को जानना, जानना, जानने की अपेक्षा दोनों एक है। परंतु आदर करने की अपेक्षा एक त्रिकाली आदरणीय है, वर्तमान (पर्याय) हेय है। आहाहा ! व्यक्ति अपनी कल्पना से और अपनी बात में जो दृष्टि स्थित हो उस दृष्टि में ले जाना चाहते है। जिनवचन में वर्तमान में सभी यह कहते हैं, निश्चय और व्यवहार दोनों कहे हैं, देखो ऊपर नहीं आया ? निश्चय व्यवहार दो नयों का विषय के भेद से विरोध है। विरोध को नाश करनेवाला `स्यात्' पद यह जिनभगवान का वचन है। उसमें कथंचित निश्चय और कथंचित व्यवहार दोनों कहे हैं, इसमें रमना - ऐसा यह कहते हैं - ऐसा नहीं, भाई ! दोनों में रम सकते नहीं। राग में रमें और स्वरूप में रमे यह दोनों कैसे हों ?

अर्थात रमने योग्य ऐसी चीज जो त्रिकाली है, उसमें रमना उसको उपादेय करके... भगवान ने उपादेय कहा है, वहाँ रमने को कहा है, यह कलशटीका में अर्थ है परंतु अभी यहाँ नहीं, वहाँ है, समझे कुछ ? जिल्द कल चढ़ाई है किसी ने दूसरे में अर्थात ऐसी ही जिल्द है उसकी। कल, कलशटीका चाहिए थी सुबह में, नहीं थी। मैंने कहा कौन ले गया ? फिर कहा कोई जिल्द चढ़ाने ले गये, कोई बहन बेटियाँ ले जाती हैं जिल्द (कबर) बदलने। सुबह में, वह जिल्द थी न जरी की।

क्या कहा यह ? `स्यात्' अपेक्षा से भगवानका कथन, त्रिकाल है वह सत्य है। और वर्तमान पर्याय असत्य है - ऐसा कहा। परंतु यह अपेक्षा से कहा है, क्योंकि

त्रिकाल का सत्य का आश्रय लेने पर सम्यक् होता है, इसलिए उसे सत्य कहा और उसका आश्रय होता नहीं, अतः उसे असत्य कहा, परंतु यह गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा था, पर्याय नहीं - ऐसा कहकर असत् कहा है - ऐसा नहीं। आहाहा ! इसके लिये फुरसत कहाँ ? इसमें कौन (समय दे) कमाना और खाना-पीना और भोगना, मर के जीना फिर ढोर में हो गया जाओ। आहाहाहा ! अररर ! (श्रोता :- वहाँ तो कमाना नहीं; और अकेला खाना) अरेरे ! क्या हो बापू ? चाहे पाँच पच्चीस लाख मिले हों और धूल, परंतु मरकर पशु में जायेंगे यह। पशु होंगे। अकेला व्यापार सारे दिन कमाना और भोग, पाप... पाप... और पाप। आहाहा ! कदम-कदम पर पाप है संसार में तो। धर्म तो नहीं, परंतु पुण्य भी नहीं वहाँ, आहाहा ! अरेरे ! स्त्री के सामने देखना, लड़कों के सामने देखना दुकान देखना, दुकान के नौकर क्या काम करते है, यह देखना और मुझे यह क्या काम करना है - यह देखना, यह झंझट पाप की चलती है, सुबह से लगातार अरेरे ! उसे पुण्य का समय मिले नहीं, जिससे गति कहीं मनुष्य की देव की मिले - ऐसा समय मिले नहीं, उसे धर्म के लिए समय... बापू ! यह तो बहुत अलौकिक बातें भाई !

उसे तो विकल्प से भी पार प्रभु ! आहाहाहा ! यह विकल्प जो गुण-गुणी के भेद का विकल्प, परंतु प्रवृत्ति से पार वस्तु है। आहाहाहा ! कहाँ जाना और कितनी निवृत्ति हो बापू ! आहाहाहा ! ***जिसे विकल्प भी बोझ लगे... आहाहा ! यह बोझा का भार निकालकर हलकी शुद्ध चैतन्यवस्तु में दृष्टि करना...*** आहाहा ! - ऐसा मार्ग है प्रभु ! दुनियाँ में वीतराग मार्ग को बिगाड़ कर मार डाला, नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। आहाहा ! क्या करते हो प्रभु ! बापू ! यह जिनवचन में रमना - इसका यह अर्थ करते है कि `निश्चय में भी रमना और व्यवहार भी रमना, जिनवचन में दोनों नय कहे है न ?' इसप्रकार अर्थ करते हैं। अरे प्रभु ! आहाहा !

जिनवचन में तो त्रिकाली ज्ञायक को ही उपादेय कहा है और पर्याय को राग को तो हेय कहा है, असत्यार्थ कहा न ? परंतु असत्यार्थ का अर्थ कि `है' परंतु आश्रय करने लायक नहीं इस अपेक्षा से उसे असत्य कहा भी है, उसे असत्य कहा। आहाहा ! परंतु इन दोनों में रमना... यह जिनवचन में दो नय कहे है। वीतराग ने दो नय कहे है और दोनों में रमना - ऐसा उसका अर्थ नहीं प्रभु यहाँ। आहाहा ! - ऐसा अर्थ यह करते हैं। जिनवाणी में दोनों आये हैं, निश्चय और व्यवहार। दोनों में रमना - ऐसा अर्थ करते है न पण्डित लोग अभी भाई ! - ऐसा नहीं बापू ! (श्रोता :- जिनवाणी में हेय उपादेय दोनों आदर करने लायक होते है ?) यह हेय-उपादेय - ऐसा नहीं, दोनों जानने लायक है कि नहीं। जानने लायक दोनों है कि

नहीं ? अतः दोनों आदर करने लायक हैं ? जानने लायक हैं परंतु एक तो उपादेयरूप जानने लायक है, और एक हेयरूप जानने लायक है। जानने योग्य की अपेक्षा दोनों बराबर है। आहाहाहा ! क्या हो भाई ? वर्तमान में भगवान है नहीं, केवली रहे नहीं। ***केवलज्ञान की उत्पत्ति रही नहीं। भले भगवान न हों परंतु यह भी रहा नहीं, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान जो प्रत्यक्ष- ऐसा सामने हो जाय कि अहो ! यह तो हमारे मन की बात जानते है भाई ! तो इनको यह भी नहीं रहा। अब इस श्रुतज्ञान द्वारा... भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को पकड़ना, यह बात अकेली रही है। आहाहा ! और वह श्रुतज्ञान वस्तुतः तो परोक्ष है, आनंद की अपेक्षा से अनुभव की अपेक्षा से प्रत्यक्ष भले कहो। आहाहाहा !***

जिनवचन... भगवान के वचन... वाणी, उसमें जो पुरुष रमते है यह जिनवचन आये न ? परंतु जिनवचन में कहीं हुई मुख्यता, यह वस्तु जो है। पूर्णानंद का नाथ प्रभु। वह उपादेय है, यह आश्रय करने लायक है, यह आदरणीय है और यह ही जगत में मूलप्रभु स्वयं है। आहाहा ! ऐसी वस्तु में जो रमते हैं। आहाहा ! उसमें प्रीति सहित (जो) अभ्यास करते है, वह पुरुष अपने द्वारा अन्य कारण बिना मिथ्यात्व कर्म के उदय का वमन करके, आहाहा ! अर्थात ? ***जो शुद्धचैतन्य स्वभाव है वहाँ अंदर रमते हैं, उन्हें मिथ्यात्व का उदय होता ही नहीं। उसने मिथ्यात्व का वमन कर दिया - ऐसा कहा जाता है।***

विशेष कहेंगे...

- प्रमाण वचन गुरुदेव !